अत्यन्त सरल है जैनधर्म

✍ **प्रो. (डॉ.) वीरसागर जैन**

बहुत-से लोग कहते हैं कि जैनधर्म एक बड़ा ही कठिन धर्म है, उसके लिए अमुक-अमुक प्रकार से बड़ी कठिन साधना करनी पड़ती है, बहुत भारी ज्ञान-चारित्रादि का गहन अभ्यास करना पड़ता है। कितने ही तो जैनधर्म के विद्वान् होकर भी ऐसा कहते देखे जाते हैं कि जैनधर्म को समझना और पालना कोई आसान कार्य नहीं है, उसके लिए बहुत अधिक समय देना पड़ता है, अनेक ग्रन्थों का बहुत गहरा अभ्यास करना होता है, अमुक-अमुक विषयों की बड़ी गूढ़-गम्भीर चर्चा समझनी पड़ती है, इत्यादि-इत्यादि। इसी प्रकार और भी अनेक प्रकार से लोग जैनधर्म को बड़ा ही कठिन धर्म प्ररूपित करते हैं।

परन्तु यदि जैन-ग्रन्थों का ही सिंहावलोकन किया जाए तो वस्तुस्थिति बिल्कुल ऐसी नहीं प्रतीत होती। वहाँ तो जैनधर्म को समझना और पालना— दोनों ही अत्यन्त सरल बताया गया है। जरा देखिए, जो सम्यग्दर्शन अत्यन्त महिमावंत है, मोक्षमार्ग का मूलाधार है, अत्यन्त दुर्लभ कहा गया है, बड़े-बड़े पंडितों को भी नहीं हो पाता है, वह सम्यग्दर्शन चारों ही गतियों में सभी संज्ञी जीवों को किसी भी साधारण निमित्त से सहज ही प्राप्त हो जाता है। जैसा कि कविवर पं. बनारसीदास जी ने भी स्पष्ट लिखा है–

'चहुँ गति सैनी जीवको, सम्यक् दरशन होइ।'

–(समयसार नाटक, 28)

विचारणीय है कि पशु, पक्षी आदि तिर्यंच, भील, चोर, किसान आदि मनुष्य, अत्यन्त प्रतिकूलता में रहनेवाले नारकी और अत्यन्त अनुकूलता में रहनेवाले सभी प्रकार के देव— ये सभी जिस सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर सकते हैं, वह कठिन कैसे हो सकता है? वह तो अत्यन्त सरल ही हुआ न!

और देखिए, शास्त्रों में कैसे-कैसे प्रसंग घटित भी हुए हैं–

1. एक अंजन नाम का चोर था। उसे भेदविज्ञान हो गया और आगे चलकर वह मुनि-दीक्षा धारण कर कैलास पर्वत से मोक्ष भी चला गया। यथा–

'अंजन चोर को आणं ताणं सेठी वाक्य प्रमाणं से भेदविज्ञान हुआ और मोक्ष भी कैलास पर्वत से गया।'

'ततश्चारणमुनिसन्निधौ तपो गृहीत्वा कैलासे केवलमुत्पाद्य मोक्षं गतः।'

–(आचार्य प्रभाचन्द्र टीका, रत्नकरण्डकश्रावकाचार, 1/19)

तदनन्तर चारण ऋद्धिधारी मुनिराज के पास दीक्षा लेकर उसने कैलास पर्वत पर तप किया और केवलज्ञान प्राप्त कर वहीं से मोक्ष प्राप्त किया।

2. एक शिवभूति नामक सेठ था। बहुत कोशिश करने पर भी वह जीवादि सात प्रयोजनभूत तत्त्वों का नाम तक कंठस्थ नहीं कर सका था और मात्र **'तुष माष भिन्नं'** ही रटने लगा था, किन्तु उसे इसी के द्वारा शरीर और आत्मा का भेदविज्ञान हो गया और आगे चलकर वह वीतराग-सर्वज्ञ भी बन गया–

''शिवभूति मुनि जीवादिकका नाम न जानैं था, अर तुषमाषभिन्न ऐसा घोषने लगा तो यहु सिद्धान्तका शब्द था नाहीं, परन्तु आपा परका भावरूप ध्यान किया, तातै केवली भया।''

–(पं. टोडरमल, मोक्षमार्ग प्रकाशक, 7/330)

इसी प्रकार के और भी सैकड़ों नहीं, हजारों प्रसंग शास्त्रों में से बताये जा सकते हैं, जिनसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जैनधर्म कठिन नहीं है, अपितु अत्यन्त सरल है।

फिर भी यदि हमें यह अत्यन्त कठिन लगता है तो समझना चाहिए कि कहीं-न-कहीं कुछ गड़बड़ अवश्य है। और वह गड़बड़ भी हमारे ही अन्दर होनी चाहिए। अन्यथा ऐसा कैसे हो सकता था कि इतने साधारण-से जीवों को तो भेदविज्ञान, सम्यग्दर्शन या मोक्षमार्ग यहाँ तक कि मोक्ष की भी प्राप्ति हो जाए और हमें निमित्तउपादान, द्रव्य-गुण-पर्यायादि की सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाएँ करते अथवा ढेर सारा व्रत-तपादि चारित्र पालते हुए पच्चीसों-पचासों वर्ष बीत गये और अभी तक कुछ नहीं हुआ। जरूर कहीं-न-कहीं कुछ बड़ी विकृति हमारे अन्दर अवश्य है। किसी ने सच ही कहा लगता है कि बड़े-बड़े पंडित उलझे रहते हैं और विशुद्ध भाव वाला साधारण जीव भी संसार से तिर जाता है।

यद्यपि यह बात एकदम सत्य है कि मोक्ष एवं मोक्षमार्ग की प्राप्ति भेदविज्ञान से ही होती है, उसके बिना कथमपि नहीं हो सकती–

'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।'

–(आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार कलश, 131)

जो कोई सिद्ध हुए हैं, वे इस भेदविज्ञान से ही हुए हैं।

तथापि वह भेदविज्ञान भी कोई हौआ नहीं है। वह तो मुनिराज से उपदेश सुने बिना ही, मात्र उनके दर्शन से ही भव्य जीवों को उत्पन्न हो सकता है। राजा श्रेणिक आदि अनेकानेक जीवों को उत्पन्न हुआ ही है। 'सर्वार्थसिद्धि' में भी लिखा है कि मुनिराज बिना बोले ही, अपनी मुद्रा से ही मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करते हैं–

'मूर्तमिव मोक्षमार्गमवाग्विसर्गं वपुषा निरूपयन्तम्।'

–(आचार्य पूज्यपाद, सर्वार्थसिद्धि, प्रथम अध्याय, प्रथम अनुच्छेद)

इतना ही नहीं, अचेतन पाषाणमयी कृत्रिम जिनप्रतिमा के दर्शन मात्र से भी भेदविज्ञान की प्राप्ति होने की बात कही गई है–

'मध्यलोकविषैं विधिपूर्वक कृत्रिम जिनबिंब विराजै हैं जिनिके दर्शनादिकतैं स्व-पर-भेद-विज्ञान होय है, कषाय मंद होय शान्तभाव होय है।' –(पं. टोडरमल, मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ 8)

विचारणीय है कि इससे सरल स्थिति और क्या हो सकती है? अरे भई, भेदविज्ञान करने में कोई पहाड़ थोड़े ही उठाने हैं, मात्र जीव और अजीव की भिन्नता ही तो पहचाननी है। यथा–

''जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्यः इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्यदुच्यते किंचित्सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः॥'' –(आचार्य पूज्यपाद, इष्टोपदेश, 50)

हिन्दी-पद्यानुवाद–

''जीव जुदा, पुद्गल जुदा, यही तत्त्व का सार।
अन्य कुछ व्याख्यान जो, याही का विस्तार॥''

दरअसल, जैनधर्म या भेदविज्ञान कठिन नहीं है, उसे कठिन हमने बना दिया है। यदि परिणामों में भद्रता हो, सरलता हो, काललब्धि आ गई हो तो सारा मोक्षमार्ग सरल ही है और यदि परिणामों में वक्रता हो, कुटिलता हो, अभी दीर्घ संसार बाकी हो तो सारा मोक्षमार्ग कठिन ही है।

मात्र भेदविज्ञान और सम्यग्दर्शन ही नहीं, आगे का सारा मोक्षमार्ग भी सरल ही है, तभी तो बादल, बिजली, सफेद बाल आदि जरा-सा कुछ भी देखकर ही अनगिनत जीवों को वैराग्य हो गया था, उन्होंने मुनि-दीक्षा अंगीकार कर ली थी।

जैनधर्म को कठिन कहनेवालों ने जैनधर्म के प्रचार-प्रसार को भी बड़ा भारी नुकसान पहुँचाया है, जबकि पूर्ववर्ती समस्त जैनाचार्यों ने कहीं भी उसे कठिन रूप में प्रस्तुत नहीं किया। संयम-तप-त्याग की बात को भी उन्होंने सर्वत्र 'यथाशक्ति' या 'शक्तितः' शब्द लगाकर ही समझाया है– शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, इत्यादि। सभी जैनाचार्यों ने एक स्वर से यह उद्घोष किया है कि–

''जं सक्कदि तं किज्जदि जं च ण सक्कदि तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो पावदि अजरामरं ठाणं॥''

–(आचार्य कुन्दकुन्द, दर्शनपाहुड, 22)

अर्थ– जितना शक्य हो उतना करो और यदि शक्य न हो तो उसकी श्रद्धा अवश्य करो। श्रद्धावान् जीव अजर-अमर पद को प्राप्त कर लेता है।

इस गाथा का हिन्दी-पद्यानुवाद कविवर द्यानतरायजी ने इसप्रकार किया है–

''कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।
द्यानत सरधावान, अजर-अमर पद भोगवै॥'' –(देव-शास्त्र-गुरु-पूजा, जयमाला)

विचारणीय है कि इसमें कठिन क्या है? हमसे जितना पाप छूटे उतना ही छोड़ना है और शेष की 'यह पाप है'– ऐसी सच्ची श्रद्धा करनी है बस! इसमें कठिनाई क्या है?

किसी भी व्यक्ति को 'जैन' होने के लिए मात्र श्रद्धा ही तो समीचीन करनी है, और अन्य क्या करना है?'श्रावक' होने के लिए भी मात्र इतनी-सी ही शर्त बताई गई है कि एक तो अरिहंत देव में अटल श्रद्धा होना चाहिए और दूसरा मात्र शाकाहारी जीवन होना चाहिए–

''हृदय में तो एक अटल हो, श्रद्धा श्री अरिहंत की।
दूजा शाकाहार रखो, बस यह परिभाषा 'जैन' की॥''

'जैन' होने के लिए दुनिया भर के लौकिक क्रियाकलापों के त्याग की या उन पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध लगाने की भी जैन आचार्यों ने कोई शर्त नहींबतायी है। बस इतना कहा है कि–

''सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न न चापि व्रतदूषणम्॥'' –(सोमदेवसूरि, यशस्तिलकचम्पू, 8/34)

जैनों को वह समस्त ही लोकव्यवहार (लोकाचार) मान्य है, जिससे सम्यक्त्व की हानि नहीं हो और व्रतों को भी दोष नहीं लगे।

दरअसल, जैनाचार्य बड़े ही उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण वाले थे। वे जानते थे कि क्षेत्र-काल के अनुसार लोकाचार में बहुत सारे परिवर्तन आते ही हैं, सभी क्षेत्र-कालों में हमारा बाहरी क्रिया-कलाप एक-सा नहीं हो सकता। अतः उन्होंने उस सबका कोई हठाग्रह प्रस्तुत नहीं किया और इसलिए हमें भी उस सब पर कोई हठाग्रह नहीं रखना चाहिए तथा और भी इधर-उधर की फालतू बातें छोड़कर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप मूलभूत मोक्षमार्ग की साधना पर ही विशेष ध्यान देना चाहिए।

इसप्रकार हम देखते हैं कि जैनधर्म तो अत्यन्त सरल है, आवश्यकता सिर्फ हमें स्वयं को सरल बनाने की है। यदि हम स्वयं को सरल बनाकर जैनधर्म को समझेंगे और पालेंगे तो वह सरलतापूर्वक ही हमारे जीवन में सहज प्रकट हो जाएगा, कहीं कोई बाधा नहीं होगी।

जैनधर्म को कठिन बताने के कारण ही आज विश्वव्यापी जैनधर्म के अनुयायियों की संख्या अत्यन्त अल्प रह गयी है, अतः आज के समय की यह सख्त आवश्यकता है कि हम जैनधर्म को अत्यन्त सरल रूप में प्रस्तुत करें। समस्त आडम्बरों से दूर, विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक तथा एकदम वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक जैनधर्म से सरल धर्म भला अन्य कौन-सा होगा?

प्रश्न– आपने यहाँ अनेक प्रकार से जैनधर्म और उसके अनुपालन को अत्यन्त सरल कहा किन्तु बोधिदुर्लभ भावना में तो बारम्बार इस बात का चिन्तन किया जाता है कि यह अत्यन्त दुर्लभ है?

उत्तर– अधिकांश जीव गलत साधनों से उसे प्राप्त करना चाहते हैं, अतः वहाँ दुर्लभ कहा है। यदि समुचित साधनों से प्राप्त करना चाहें तो अत्यन्त सरल ही है। जैसा कि आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने भी कहा है–

''पदमिदं ननु कर्मदुरासदं, सहजबोधकला सुलभं किल।''

–(आत्मख्याति, कलश, 143)

जिसप्रकार बिना चाबी के या गलत चाबी के ही कोई ताला खोलना चाहे तो वह अत्यन्त कठिन है, किन्तु यदि सही चाबी लगाकर खोला जाए तो अत्यन्त सरल ही है, उसीप्रकार बाह्य कर्मकांड के द्वारा कोई आत्मज्ञान या आत्मध्यान का उत्कृष्ट पद प्राप्त करना चाहे तो उसे अत्यन्त दुर्लभ कहा है, परन्तु यदि कोई सहज ज्ञान कला के द्वारा प्राप्त करना चाहे तो अत्यन्त सुलभ ही है।

इस श्लोक का कविवर पं. बनारसीदासजी द्वारा किया हुआ हिन्दी पद्यानुवाद भी अत्यन्त सारगर्भित है–

''बहुविध क्रिया कलेस सौं, शिवपद लहै न कोय।
ज्ञान कला परकास तैं, सहज मोखपद होय॥'' –(समयसार नाटक)

दरअसल, हमने ही इसे अन्यथा समझकर, समझाकर या यों ही केवल कह-कहकर ऐसा कठिन बना दिया है, जैसाकि इस बुन्देलखण्डी कहावत में हुआ है–

''सत्तू, मन मत्तू, कब घोरैं? कब खाएं?
धान! चट कूटी, पट खाई॥''

अन्यथा धर्म बड़ा सरल है, क्योंकि उसके लिए कठिन कुछ करना ही नहीं है। साधक को मात्र अपनी दृष्टि

बदलनी है, सृष्टि नहीं। अथवा मात्र अपनी मनःस्थिति बदलनी है, परिस्थिति नहीं। कठिन तो तब होता जब बाहर की सृष्टि या परिस्थिति को बदलना होता। किन्तु ऐसा कुछ भी नहीं करना है। सब-कुछ अपने मन में ही करना है, जैसा कि निम्नलिखित श्लोक में भी कहा है–

''जलेन जनितः पंकः जलेन परिशुद्ध्यति।
चित्तेन जनितं कर्म चित्तेन परिशुद्ध्यति॥''

अर्थ– जिसप्रकार जल से ही कीचड़ उत्पन्न होता है और जल से ही वह शुद्ध हो जाता है, उसीप्रकार मन से ही विकार उत्पन्न होता है और मन से ही वह शुद्ध भी हो जाता है।

इसीप्रकार आचार्यों का एक और भी कथन गंभीरतापूर्वक ध्यातव्य है–

''जेहउ मणु विसयहँ रमइ, तिमु जइ अप्प मुणेइ।
जोइउ भणइ हो जोइयहु, लहु णिव्वाणु लहेइ॥'' –योगसार 50

हिन्दी-पद्यानुवाद– **''ज्यों मन विषयों में रमे, त्यों हो आतमलीन।**
शीघ्र लहे निर्वाण पद, योगीजन कह दीन॥''

संसार के सभी कार्य जो हमको अनादिकालीन अभ्यासवश सरल लग रहे हैं वे वास्तव में अत्यन्त कठिन हैं– पराधीन होने से। किन्तु आत्मानुभूति अत्यन्त सरल है– स्वाधीन होने से। देखो आश्चर्य कि एक कप चाय बनाना और पीना तो अत्यन्त कठिन कार्य है परन्तु इसे सरल लगता है और आत्मा का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण अत्यन्त सरल कार्य है परन्तु इसे बड़ा कठिन लगता है। यह अज्ञान की महिमा है। अन्यथा तो कार्य इतना सरल है कि–

''तसवीर-ए-खुदा आइने में है।
जब चाही, गर्दन झुकाई, देख ली॥''

अरे, गर्दन झुकाने की बात भी मिथ्या है, कठिन है आत्मधर्म के लिए तो गर्दन झुकाने की भी जरूरत नहीं पड़ती।

❖❖

1. ''बोधि अपना भाव है, निश्चय दुर्लभ नांहि।''
2. ''अरिहंत सहज है होना।''
3. ''सबसे सरल है निजपद पाना।''
4. ''हाथी की पीठ पर फूल ले जाने जितना सरल है आत्मधर्म।''
5. ''सहज सरल जीवन की पोथी, बड़ा कठिन अनुवाद हो गया।
पद-पद के लघु विश्रामों पर, कैसा घोर विवाद हो गया।।''